न्यायालय राजस्व परिषद, उत्तराखण्ड, देहरादून।

निगरानी संख्या– 13/2013–14

महन्त अशोक प्रपन्न शर्मा

–बनाम–

श्री सुरेश चन्द संगर आदि

उपस्थितिः श्री पी0एस0 जंगपांगी, आई0ए0एस0 सदस्य(न्यायिक)

अधिवक्ता निगरानीकर्ता : श्री कुशलपाल सिंह
अधिवक्तागण उत्तरदातागण : सर्व श्री एन0एन0 तिवारी, श्री बृज संगर एवं श्री सुनील सिन्हा।

बावत

भूमि खसरा नम्बर–55 रकबा 0.30 एकड़ स्थित ग्राम ऋषिकेश, परगना–परवादून, तहसील ऋषिकेश, जनपद देहरादून।

निर्णय

यह निगरानी विद्वान सहायक कलेक्टर, प्रथम श्रेणी, ऋषिकेश द्वारा विविध वाद संख्या–02/2012–13 (मूल वाद संख्या–1/1968) श्री राममूर्ति बनाम महन्त अशोक प्रपन्न शर्मा अन्तर्गत धारा–144 सिविल प्रकिया संहिता में पारित आदेश दिनांक 10–10–2013 के विरूद्व प्रस्तुत की गई है।

वाद का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है कि :– महन्त परशुराम ने बहैसियत महन्त सज्जादानशीन श्री मन्दिर भरत जी महाराज, ऋषिकेश द्वारा एक वाद अन्तर्गत 180 उ0प्र0 काश्तकारी अधिनियम राममूर्ति एवं राम किशन के विरूद्व न्यायालय सहायक कलेक्टर, प्रथम श्रेणी, देहरादून के समक्ष दिनांक 05–07–1954 को प्रस्तुत किया गया। वाद एवं उससे जनित अपील/निगरानी की अवधि में वादी एवं प्रतिवादी संख्या–1 की मृत्यु हो गई और उनके स्थान पर वर्तमान महन्त एवं प्रतिवादी संख्या–1 के पुत्रगण/विधिक उत्तराधिकारीगण प्रतिस्थापित किए गए। वादी का यह वाद दिनांक 19–09–1956 को विपक्षी के विरूद्व डिक्री किया गया जिसके विरूद्व वादी द्वारा प्रथम अपील संख्या–03/1956 आयुक्त, मेरठ मण्डल, मेरठ के समक्ष प्रस्तुत की गई जिसे विद्वान आयुक्त ने अपने आदेश दिनांक 05–04–1957 से खारिज किया। राममूर्ति द्वारा द्वितीय अपील राजस्व परिषद, उ0प्र0 में दायर की गई। द्वितीय अपील के विचाराधीन रहते ही महन्त परशुराम ने अपने पक्ष में प्राप्त डिक्री दिनांक 10–09–1956 के आधार पर राममूर्ति के खिलाफ आदेश प्राप्त कर विवादित भूमि का कब्जा दिनांक 27–06–1957 को निष्पादन की कार्यवाही द्वारा राममूर्ति से प्राप्त कर लिया और वाद एवं अपील की डिक्री राशि रू0 75.44 राममूर्ति से दिनांक 04–07–57 को वसूल कर लिया। राजस्व परिषद, उ0प्र0 के समक्ष लम्बित द्वितीय अपील के दौरान उ0प्र0 नागर–क्षेत्र जमींदारी विनाश एवं भूमि व्यवस्था अधिनियम लागू हो गया जिसके सापेक्ष द्वितीय अपील की कार्यवाही

रोक दी गई। वाद में दोनो पक्षों को सुनने के पश्चात दिनांक 04–12–1963 को राममूति की उक्त अपील उपशमित हो गई। राममूर्ति ने राजस्व परिषद के आदेश दिनांक 04–12–63 के विरूद्व एक प्रार्थना पत्र संख्या–07/63–64 राजस्व परिषद के समक्ष प्रस्तुत किया गया जिसमें पुनः दोनों पक्षों को सुनने के पश्चात राजस्व परिषद ने अपने आदेश दिनांक 10–03–1966 से राममूर्ति के प्रार्थना पत्र को स्वीकार करते हुए महन्त परशुराम का उ0प्र0 काश्तकारी अधिनियम का वाद अन्तर्गत धारा–180 भी उपशमित कर दिया गया जिसकी पुष्टि दूसरे न्यायिक सदस्य ने अपने आदेश दिनांक 31–08–1967 से की। वाद एवं अपील अन्तर्गत धारा–180 उ0प्र0 काश्तकारी अधिनियम उपशमित होने के उपरान्त राममूर्ति ने दिनांक 01–11–1968 को एक प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा–144 सिविल प्रकिया संहिता न्यायालय सहायक कलेक्टर, प्रथम श्रेणी, देहरादून के समक्ष प्रस्तुत करते हुए सम्पत्ति खसरा नम्बर–55/2 रकबा 0.30 एकड़ मौजा–ऋषिकेश का कब्जा वापस लेने एवं डिकी राशि रू0 75.44 तथा अन्य अनुतोष रू0 66,069.44 वार्षिक ब्याज सहित विपक्षी से दिलाये जाने की मांग की जिसे विद्वान सहायक कलेक्टर ने अपने आदेश दिनांक 07–03–1969 से इस आधार पर खारिज किया गया कि मा0 राजस्व परिषद द्वारा उ0प्र0 काश्तकारी अधिनियम का वाद उपशमित किये जाने पर विपक्षी की डिकी वापस नहीं हुई है, इसलिए वादी का प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा–144 सिविल प्रकिया संहिता पोषणीय नहीं है। उक्त आदेश दिनांक 07–03–1969 के विरूद्व प्रथम अपील विद्वान अपर आयुक्त, मेरठ मण्डल, मेरठ के समक्ष प्रस्तुत की गई जिसे विद्वान अपर आयुक्त ने अपने आदेश दिनांक 29–04–72 से यह कहते स्वीकार किया गया कि उ0प्र0 काश्तकारी अधिनियम 180 का वाद उपशमित हो जाने पर विपक्षी की डिकी वापस हो गई है तथा वादी का वाद अन्तर्गत धारा–144 सिविल प्रकिया संहिता पोषणीय है तथा प्रकरण सहायक कलेक्टर को निस्तारण हेतु वापस कर दिया। उक्त आदेश दिनांक 29–04–1972 के विरूद्व कोई अपील प्रस्तुत नहीं की गई। अवर न्यायालय में विपक्षी द्वारा एक संशोधन प्रार्थना पत्र दिनांक 22–07–1974 प्रस्तुत किया गया जिसमें उन्होंने अपने जबावदावा दिनांक 29–03–1968 में आंशिक संशोधन की प्रार्थना की जिसे न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया, जिसके विरूद्व वादी ने अपर आयुक्त, मेरठ के समक्ष निगरानी प्रस्तुत की जिसे राजस्व परिषद को अपनी संस्तुति सहित आदेश हेतु प्रेषित किया गया। राजस्व परिषद ने अपर आयुक्त की संस्तुति को अपने आदेश दिनांक 12–06–1979 खारिज करते हुए विपक्षी का संशोधन प्रार्थना पत्र स्वीकार किया गया जिसके विरूद्व वादी ने एक रिट याचिकासंख्या–6417 वर्ष 1979 राममूर्ति बनाम राजस्व परिषद आदि मा0 उच्च न्यायालय, इलाहाबाद में दायर की जो निस्तारण हेतु मा0 उच्च न्यायालय, नैनीताल को स्थानान्तरित हुई तथा आदेश दिनांक 30–08–2010 निम्न प्रकार पारित किया गया :–

" Therefore the impugned order dated 12-06-1979 passed by Board of Revenue is set aside on this ground alone. The reference is accepted. The S.D.O.

concerned is directed to decide the application of the petitioner filed under section 144 CPC after considering the objection filed against it, on the basis of legal argument, expeditiously ..... ."

दिनांक 23–03–2012 को विपक्षी द्वारा पुनः संशोधन प्रार्थना पत्र अवर न्यायालय में इस आशय का प्रस्तुत किया गया कि आपत्ति दिनांक 29–03–1968 में संशोधन की अनुमति दी जाय। न्यायालय ने दिनांक 22–03–2012 को ही विपक्षी का संशोधन प्रार्थना पत्र यह कहते हुए अस्वीकार किया कि प्रार्थना पत्र संशोधन से सम्बन्धित है जिसे आज इस स्तर पर सुने जाने का कोई औचित्य नहीं है। प्रकरण पूर्व में अपीलीय न्यायालय में सुना जा चुका है। विपक्षी ने आदेश दिनांक 22–03–2012 के विरूद्व अपर आयुक्त, गढ़वाल मण्डल, पौडी के न्यायालय में निगरानी प्रस्तुत की गई जिसे विद्वान अपर आयुक्त ने अपने आदेश दिनांक 02–01–2013 से खारिज कर दिया गया। तत्पश्चात विद्वान सहायक कलेक्टर ने वादी का वाद अन्तर्गत धारा–144 सिविल प्रकिया संहिता आदेश दिनांक 10–10–2013 से निर्णीत किया गया। उक्त आदेश से क्षुब्ध होकर निगरानीकर्ता ने यह निगरानी प्रस्तुत की है।

वर्तमान निगरानी के मुख्य आधार ये हैं कि आक्षेपित आदेश दिनांक 10–10–2013 विधिक प्राविधानों एवं नियमों के विपरीत है कि अवर न्यायालय में प्रस्तुत विधि व्यवस्थाओं की त्रुटिपूर्ण व्याख्या की गई है, कि प्रकरण से सम्बन्धित पूर्व में योजित अपीलों में उच्चतर न्यायालयों द्वारा किए गए विनिश्चयन का अर्थ त्रुटिपूर्ण रूप से किया गया है, कि आक्षेपित आदेश तथ्य एवं न्याय के दृष्टिकोण से त्रुटिपूर्ण एवं अवैधानिक आदेश है क्योंकि विद्वान अवर न्यायालय ने क्षेत्राधिकार के परे जाकर एवं निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग किए बिना आक्षेपित आदेश पारित किया है। निगरानी प्रार्थना पत्र में यह भी कहा गया है कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा निम्न बिन्दुओं पर अपना निष्कर्ष दिया जाना चाहिए था :–

1. क्या प्रार्थीगण का प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा–144 सी0पी0सी0 का तात्पर्य निष्पादन प्रार्थना पत्र से है ?
2. क्या प्रार्थीगण का प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा–144 सी0पी0सी0 कालबाधित है ?
3. क्या प्रार्थीगण प्रार्थना पत्र में दिये गये अनुतोष को प्राप्त करने के अधिकारी हैं ?
4. क्या माननीय न्यायालय को वादग्रस्त भूमि पर कब्जा दिलाने का क्षेत्राधिकार है ?
5. क्या निष्पादन कार्यवाही के अन्तर्गत धारा–144 सी0पी0सी0 में अतिचारी को न्यायालय द्वारा कब्जा दिलाया जा सकता है ?
6. क्या माननीय राजस्व परिषद के आदेश दिनांक 12–11–1963 के अनुसार अपील के उपशमित होने पर पक्षकारों का दावा Uttar Pradesh Urban Area Zamindari and Land Reforms Act के प्राविधानों व उसमें निर्मित नियमों के अन्तर्गत निर्णीत किया जायेगा ?

7. क्या जहां पर कानून के द्वारा Intervene किया गया है, वहां पर धारा–144 सी0पी0सी0 के अन्तर्गत कब्जा प्रदान किया जा सकता है?

8. क्या जहां पर न्यायालय को किसी पक्षकार को किसी प्रतिकार को प्रदान करने का क्षेत्राधिकार नहीं था ऐसी दशा में क्या न्यायालय द्वारा पारित आदेश और उसके आधार पर पारित डिक्री शून्य है ? और यदि डिक्री शून्य है तो क्या उस शून्य प्रश्न को वाद के दौरान किसी भी स्तर पर, जिसमें निष्पादन कार्यवाही भी सम्मिलित है, में उठाया जा सकता है ?

9. क्या जहां पर धारा–144 सी0पी0सी0 के अन्तर्गत हर्जे की राशि को वापिस करने का प्रश्न है तो वह ऋण को वापिस करने का है, इसलिए क्या श्री राममूर्ति के उत्तराधिकारियों को क्षति की डिक्री को वापिस प्राप्त करने के लिए उत्तराधिकार प्रमाण–पत्र न्यायालय से लेना आवश्यक है ?

10. क्या यदि भूमि अकृषक सीमांकित हुई है, जैसा कि पत्रावली पर उपलब्ध खतौनी व आकार पत्र से स्पष्ट है, तो ऐसी दशा में क्या Uttar Pradesh Urban Area Zamindari and Land Reforms Act के प्राविधान लागू नहीं होंगे ?

मैंने उभयपक्ष के विद्वान अधिवक्तागण के द्वारा प्रस्तुत बहस को सविस्तार दो दिवसों पर सुना एवं समस्त अभिलेखों एवं प्रस्तुत न्यायिक व्यवस्थाओं का सम्यक अध्ययन किया।

वर्तमान निगरानी के निस्तारण हेतु निगरानी प्रार्थना पत्र में उल्लिखित 10 बिन्दुओं का विनिश्चयन आवश्यक एवं पर्याप्त होगा। अतः उद्धरित बिन्दुओं का निम्नवत निस्तारण किया जा रहा है :–

1. क्या प्रार्थीगण का प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा–144 सी0पी0सी0 का तात्पर्य निष्पादन प्रार्थना पत्र से है:– यह निर्विवादित है कि निगरानीकर्ता के पूर्व पुरूष (predecessor) ने प्रश्नगत भूमि के विषय में एक बेदखली का वाद मूल प्रतिवादीगण राममूर्ति आदि के विरूद्ध धारा–180 उ0प्र0 काश्तकारी अधिनियम के अन्तर्गत वर्ष 1954 में योजित किया था जो वर्ष 1956 में डिक्री हो गया, परन्तु अन्ततः माननीय राजस्व परिषद, उ0प्र0 के समक्ष प्रस्तुत द्वितीय अपील उ0प्र0 नागर क्षेत्र जमींदारी विनाश अधिनियम के लागू होने के कारण 04–12–1959 को उपशमित हो गई। चूँकि मूल वाद के डिक्री होने के उपरान्त वादी द्वारा निष्पादन की कार्यवाही के माध्यम से प्रश्नगत भूमि से तत्कालीन प्रतिवादीगण को बेदखल करवा दिया गया था, अतः पहले अपील एवं बाद में मूल वाद के उपशमित होने/किये जाने के दृष्टिगत जो कार्यवाही निष्पादन के आधार पर की गई थी को निरस्त/शून्य (undo) किया जाना तार्किक था जिस हेतु मूल प्रतिवादी राममूर्ति के विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा विचारण न्यायालय में

धारा--144 सिविल प्रकिया संहिता के अन्तर्गत प्रत्यास्थापन का प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया। धारा--144 सिविल प्रकिया संहिता का प्राविधान निम्नवत है :--

प्रत्यास्थापन के लिए आवेदन-- जहाँ कि और जहाँ तक कि किसी डिक्री या आदेश में (किसी अपील, पुनरीक्षण या अन्य कार्यवाही में फेरफार किया जाए या उसे उलटा जाए अथवा उसको इस प्रयोजन के लिए संस्थित किसी वाद में अपास्त किया जाए या उपान्तरित किया जाए वहाँ और वहाँ तक वह न्यायालय जिसने डिक्री या आदेश पारित किया था,) उस पक्षकार के आवेदन पर जो प्रत्यास्थापन द्वारा या अन्यथा कोई फायदा पाने का हकदार है, ऐसा प्रत्यास्थापन कराएगा जिससे पक्षकार, जहाँ तक हो सके, उस स्थिति में हो जाएंगे जिसमें वे होते यदि वह डिक्री या आदेश या (उसका वह भाग जिसमें फेरफार किया गया है या जिसे उलटा गया है या अपास्त किया गया है या उपान्तरित किया गया है,) न दिया गया होता और न्यायालय इस प्रयोजन से कोई ऐसे आदेश जिनके अन्तर्गत खर्चों के प्रतिदाय के लिए और ब्याज, नुकसानी, प्रतिकर और अन्तःकालीन लाभों के संदाय के लिए आदेश होंगे, कर सकेगा जो (उस डिक्री या आदेश को ऐसे फेरफार करने, उलटने, अपास्त करने या उपान्तरण के उचित रूप में पारिणामिक है)।

इसके विपरीत निष्पादन की कार्यवाही विषयक प्राविधान संहिता के भाग--2 में निष्पादन--सामान्य अध्याय शीर्षक के अन्तर्गत धारा--36 से 48 के अन्तर्गत प्राविधानित है। निष्पादन की कार्यवाही का सामान्य एवं वैधानिक तात्पर्य यह होता है कि किसी वाद की कार्यवाही में डिक्री अथवा आदेश पारित होने की स्थिति में ऐसी डिक्री/आदेश द्वारा जो लाभ वादी को विधितः प्राप्त होते हैं, उन्हें निष्पादन की निर्धारित प्रकिया के अन्तर्गत उसे दिलाया जाता है।

वर्तमान प्रकरण में वाद एवं अपील की कार्यवाही उपशमित होकर के मूल वाद में पारित डिक्री निष्प्रभावी हुई है, अन्ततः बाद में निष्प्रभावी की गयी डिक्री के अन्तर्गत हुई इजराय की कार्यवाही के द्वारा जो स्थल की स्थिति परिवर्तित हुई अथवा जिस वस्तु अथवा लाभ से मूल वाद का प्रतिवादी पक्ष एवं प्रत्यास्थापन प्रार्थी वंचित हुआ है उसे इस प्रकार प्रत्यास्थापित किया जायेगा जैसे कि मूल वाद में पारित डिक्री पारित ही न हुई हो अर्थात पारित (उपशमन से निष्प्रभावी) डिक्री के निष्पादन से पूर्व की स्थिति बहाल की जायेगी। तद्नुसार इस हेतु की जाने वाली कार्यवाही को प्रत्यास्थापन की कार्यवाही ही कहा जायेगा।

वैधानिक प्राविधानों की वर्णित स्थिति के दृष्टिगत आलोच्य प्रत्यास्थापन प्रार्थना पत्र का तात्पर्य निष्पादन प्रार्थना पत्र से नहीं हो सकता है। अपितु स्थिति यह है कि निष्पादन के परिणामस्वरूप जो लाभ मूल वादी को प्राप्त हुए हैं उन्हे उसके विधिक प्रतिनिधियों से अन्ततः वाद उपशमित होने से निष्प्रभावी हुई डिक्री के अन्तर्गत हुई निष्पादन की कार्यवाही को उल्टा कर उन प्रतिवादी/प्रतिवादीगण को प्रत्यास्थापित किया जाना है जिससे वे प्रश्नगत निष्पादन की कार्यवाही के अन्तर्गत वंचित हुए। तद्नुसार निष्पादन की कार्यवाही के प्रभाव को

प्रत्यास्थापन की कार्यवाही से उल्टा किये जाने का प्रकरण आलोच्य प्रत्यास्थापन प्रार्थना पत्र में निहित है परन्तु इतना अवश्य है कि प्रत्यास्थापन से सम्बन्धित प्रक्रियात्मक व्यवस्थाओं के विषय में विधिक स्थिति की अनुपलब्धता/अस्पष्टता के दृष्टिगत प्रत्यास्थापन की कार्यवाही को निष्पादन की कार्यवाही की भांति माना जा सकता है।

2. क्या प्रार्थीगण का प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा–144 सी0पी0सी0 कालबाधित है :– यह निर्विवादित है कि मूल वाद की कार्यवाही धारा–180 काश्तकारी अधिनियम के अन्तर्गत प्रचलित हुई थी एवं उ0प्र0 नागर क्षेत्र जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के लागू होने पर इस वाद की कार्यवाही अन्ततः दिनांक 31–08–67 में उपशमित हो गई। यह भी स्पष्ट है कि प्रत्यास्थापन हेतु काल अवधि विषयक कोई स्पष्ट विधिक प्राविधान नहीं है जिसका एक आशय तो यह हुआ कि इसके लिए कोई काल अवधि निर्धारित नहीं है अर्थात प्रत्यास्थापन कभी भी किया जा सकता है, परन्तु न्याय का तकाजा है कि किसी भी कार्यवाही की तार्किक परिणिति एक निश्चित समयावधि में अवश्य हो जानी चाहिए। तद्नुसार यदि प्रत्यास्थापन की कार्यवाही को निष्पादन की कार्यवाही के समतुल्य अथवा भाँति मान लिया जाय जैसा कि इस सम्बन्ध में कई न्यायिक दृष्टाँन्त उपलब्ध हैं, उस स्थिति में डिक्री के निष्पादन हेतु निर्धारित काल अवधि का सहारा लेना ही श्रेयष्कर है परन्तु इस सम्बन्ध में वर्तमान प्रकरण के लिए यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि इस हेतु मर्यादा/कालावधि अधिनियम के प्राविधान लागू होंगे अथवा काश्तकारी अधिनियम के। मूल वाद काश्तकारी अधिनियम के अन्तर्गत ही योजित हुआ था यद्यपि वाद उ0प्र0 नागर क्षेत्र जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के प्राविधानों के अनुसार उपशमित हुआ है। चूँकि निष्पादन की कार्यवाही काश्तकारी अधिनियम के अन्तर्गत ही हुई अतः प्रत्यास्थापन की कार्यवाही हेतु काल अवधि भी काश्तकारी अधिनियम के द्वारा निर्धारित ही लागू होगी। काश्तकारी अधिनियम के चौथी अनुसूची के समूह–च की क्रम संख्या–7 के अन्तर्गत प्राविधानित एक वर्ष की काल अवधि निष्पादन के लिए उपलब्ध है। निष्पादन की कार्यवाही की भाँति ही प्रत्यास्थापन की कार्यवाही माने जाने की स्थिति में प्रत्यास्थापन हेतु काल अवधि एक वर्ष की मानी जा सकती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि काश्तकारी अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित काल अवधि अपील के उपशमन होने की तिथि से लागू होगी अथवा मूल वाद के। इस सम्बन्ध में यह निर्विवादित है कि अपील दिनांक 04–12–63 को उपशमित हुई। प्रत्यास्थापन की कार्यवाही वाद उपशमित न होने एवं मूल डिक्री के यथावत रहने के दृष्टिगत अग्राह्य थी। तदनुसार प्रतिवादी पक्ष द्वारा माननीय राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश में वाद के उपशमन एवं डिक्री के निष्प्रभावी किए जाने के लिए त्रुटिपूर्ण आदेश के शुद्धिकरण करने के लिए आवेदन किया जो अन्ततः दिनांक 31–08–67 को स्वीकार हुआ तथा वाद उपशमित माना गया। प्रत्यास्थापन प्रार्थना पत्र 17–01–68 को प्रस्तुत हुआ। वाद उपशमित होने के दृष्टिगत प्रत्यास्थापन प्रार्थना पत्र काल अवधि के भीतर प्रस्तुत होना स्पष्ट है।

निगरानीकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के प्रत्यास्थापन प्रार्थना पत्र काल बाधित होने के तर्क के समर्थन में कथन यह है कि प्रत्यास्थापन की कार्यवाही निष्पादन की कार्यवाही की भांति होने के दृष्टिगत उ0प्र0 काश्तकारी अधिनियम में निष्पादन के लिए निर्धारित काल अवधि एक वर्ष प्रत्यास्थापन की कार्यवाही पर भी प्रभावी है एवं यह काल अवधि 04–12–63 से गिनी जायेगी क्योंकि द्वितीय अपील उसी दिन उप शमित हुई थी। वाद उपशमन अन्ततः 31–08–67 को आदेशित होने का आशय उसके पूर्वगामी प्रभाव से लागू होना (relate back) है। इस सम्बन्ध में उन्होंने ए0आई0आर0 1966 एस0सी0 पृष्ठ 1194 में भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त कि प्रत्यास्थापन प्रार्थना पत्र डिक्री निष्पादन प्रार्थना पत्र है को उद्धरित किया है। मकबूल आलम व प्रति खोदेजा में अवधारित उक्त सिद्धान्त प्रांग न्याय के सिद्धान्त के लागू होने अथवा न लागू होने के सम्बन्ध में है न कि प्रत्यास्थापन हेतु काल अवधि पर। विद्वान अधिवक्ता ने ए0आई0आर0 1988 गुजरात पृष्ठ 135 में प्रतिपादित सिद्धान्त कि मूल आदेश प्रतिस्थापित/अवकमित न किया गया हो को काल अवधि लिपिकीय त्रुटि सुधार की तिथि से न गिन कर मूल आदेश की तिथि से गिनी जायेगी, के अनुसार यह तर्क प्रस्तुत किया है कि द्वितीय अपील के उपशमन की तिथि से प्रत्यास्थापन कार्यवाही हेतु कालवधि की गणना की जायेगी न कि कालान्तर में वाद उप शमित किये जाने के आदेश की तिथि से। वर्तमान प्रकरण मेरी राय में भिन्न है क्योंकि वाद उपशमन बाद में न्यायालय के संज्ञान में एक वैधानिक विसंगति रह जाने का तथ्य लाये जाने पर हुआ है जिसे लिपिकीय त्रुटि की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। वाद उपशमन होना एक तात्विक परिवर्तन होने से कही अधिक है क्योंकि इससे स्थिति यह बनती है कि जैसे कि वाद योजित ही न हुआ हो। उद्धरित न्यायिक व्यवस्था में तथ्यों का सम्बन्ध त्रुटि पूर्वक सर्वे नम्बर का उल्लेख किया जाने से था। सक्षम न्यायालय को अपील उपशमित करते समय वाद का भी उपशमन आदेशित करना चाहिए था जो कि वाद में विसंगति संज्ञान में लाये जाने पर किया गया। " **Actus curiae neminem gravabit**" अर्थात "न्याय के कृत्य से किसी क्षति न होती" न्यायिक उक्ति के दृष्टिगत वर्णित त्रुटि के लिए पक्षकार को दण्डित नहीं किया जा सकता है। वैसे भी, यदि अपील वाद का विस्तार है तो अपील उपशमित होने पर वाद भी उपशमित हो जाना चाहिए। परन्तु इस तकनीकी त्रुटि के कारण प्रत्यास्थापन पहली बार में ग्राह्य नहीं माना गया। ए0आई0आर0 1966 पंजाब व हरियाणा पृष्ठ 518 में प्रतिपादित सिद्धान्त भी मूल आदेश के प्रभावी रहने विषयक है। जहाँ तक ए0डब्लू0सी0 1977 पृष्ठ 109 में प्रतिपादित मा0 उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के सिद्धान्त का प्रश्न है यह सिद्धान्त चकबन्दी कियाओं की समाप्ति हेतु जारी अधिसूचना की तिथि से घोषणा वाद हेतु काल अवधि गिने जाने विषयक है क्योंकि रिट याचिका में कोई अन्तरिम प्रतिकूल आदेश ऐसे वाद योजन के सम्बन्ध में पारित नहीं किया गया था।

इस सम्बन्ध में निगरानीकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आर0डी0 1984 पृष्ठ--90, आर0डी0 1979 पृष्ठ--130, आर0डी0 1979 पृष्ठ--111, आर0डी0 1973 पृष्ठ--166, ए0डब्लू0सी0 1989 पृष्ठ--29(आर0) एवं आर0डी0 1984(एफ0बी0) पृष्ठ--76 में प्रतिपादित न्यायिक दृष्टान्तों को उद्धरित करते हुए इस बात पर बल दिया है कि मर्यादा विधि भले ही किसी पक्षकार के लिए असुविधाजनक अथवा कष्टदायी हो परन्तु न्यायालयों के समक्ष इसके प्राविधानों को पूर्णतः प्रभावी रूप से लागू करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है एवं किसी भी विधि की व्याख्या करने में असुविधा एक निर्णायक कारक नहीं है। जैसा कि पूर्व में विवेचित किया जा चुका है कि वाद उपशमित अन्ततः 21--07--67 को आदेशित होने एवं प्रत्यास्थापना प्रार्थना पत्र दिनांक 17--01--68 को प्रस्तुत किये जाने एवं प्रत्यास्थापना प्रार्थना पत्र एक वर्ष की अवधि के भीतर प्रस्तुत किये जाने के आधार पर कालबाधित नहीं है। अतः उद्धरित न्यायिक व्यवस्था के दृष्टिगत भी प्रत्यास्थापना प्रार्थना पत्र ग्राह्य है।

तद्नुसार उपर्युक्त निर्णय के दृष्टिगत यह पुनः स्पष्ट किया जाता है कि प्रत्यास्थापन की कार्यवाही को निष्पादन की कार्यवाही की भांति माने जाने की स्थिति में भी आलोच्य प्रत्यास्थापन प्रार्थना पत्र कालबाधित नहीं है। अधीनस्थ न्यायालय का एतदसम्बन्धी विनिश्चयन उपर्युक्त के आलोक में संशोधित माना जायेगा।

उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने इस सम्बन्ध में ए0आई0आर0 1965 सुप्रीम कोर्ट पृष्ठ--1477 जिसमें प्रत्यास्थापन को डिक्री निष्पादन की भांति मानते हुए संशोधित डिक्री से 03 वर्ष के भीतर प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करना विधिसम्मत माना है एवं ए0आई0आर0 1975 आन्ध्र प्रदेश पृष्ठ--310 जिसमें यह कहा गया है कि धारा--144 दीवानी प्रक्रिया संहिता न्यायालय को कोई विकल्प अथवा विवेकाधिकार नहीं प्रदत्त करता है एवं ऐसे पक्षकार के पक्ष में प्रत्यास्थापन आदेशित करता है जिसने त्रुटिपूर्ण डिक्री अथवा आदेश के कारण क्षति वहन की है, ऐसे अधिकार की प्राप्ति हेतु धारा--144 दीवानी प्रक्रिया संहिता में कोई सीमा नहीं आरोपित करती है। उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्तागण ने अपने तर्क के समर्थन में ए0आई0आर0 1995 सुप्रीम कोर्ट पृष्ठ--441, आर0डी0 1996 इलाहाबाद पृष्ठ--20 प्रतिपादित न्यायिक सिद्धान्त पर भी विश्वास व्यक्त किया है जिसमें मा0 न्यायालयों ने यह अवधारित किया है कि प्रत्यास्थापन का क्षेत्राधिकार हर न्यायालय में अन्तर्निहित है(inherent) है एवं प्रत्यास्थापन अनुमन्य किया जाना बाध्यकारी है। इसी क्रम में विद्वान अधिवक्ता ने ए0आई0आर0 1993 कर्नाटक पृष्ठ--338, ए0आई0आर0 1975 आन्ध्र प्रदेश पृष्ठ--228, ए0आई0आर0 1977 दिल्ली पृष्ठ--12 में उद्धरित न्यायिक व्यवस्था की ओर इस आशय से ध्यान आकर्षित किया है कि ऐसे व्यक्तियों से भी धारा--144 दीवानी प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत प्रत्यास्थापन कराया जा सकता है जो निष्प्रभावी डिक्री के अन्तर्गत लाभ पाने वाले व्यक्ति के प्रतिनिधि हैं जिनमें हित प्राप्त करने वाला प्रतिनिधि भी सम्मिलित है।

इस सम्बन्ध में उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने मेरा ध्यान ए0आई0आर0 1974 ईलाहावाद पेज 479 एवं ए0आई0आर0 1981 ईलाहावाद पेज 169 में प्रतिपादित न्यायिक सिद्धान्ज की और आकृषित किया है, जिसका तात्पर्य यह है कि वाद उपशमित होने पर कोई भी पक्षकार निषप्रभावी डिग्री से कोई लाभ नहीं ले सकता।

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में यह स्पष्ट है कि प्रत्यास्थापन हेतु कोई काल अवधि विधिवत अधिनियमित नहीं है एवं प्रत्यास्थापन को निष्पादन की भांति माना जाय उस स्थिति में भी वर्तमान प्रार्थना पत्र कालबाधित नहीं है।

4. क्या माननीय न्यायालय को वादग्रस्त भूमि पर कब्जा दिलाने का क्षेत्राधिकार है :— यह निर्विववादित है कि वर्ष 1954 में योजित धारा—180 काश्तकारी अधिनियम के अन्तर्गत बेदखली के वाद के डिकी हो जाने के उपरान्त द्वितीय अपील के लम्बित रहने की अवधि में मूल वादी द्वारा पारित डिकी का निष्पादन करवाकर वादग्रस्त भूमि का अध्यासन प्राप्त कर लिया गया था। निष्पादन न्यायालय सहायक कलेक्टर, प्रथम श्रेणी/उपखण्ड अधिकारी, देहरादून था। वर्तमान में पूर्व उपखण्ड देहरादून में से उपखण्ड, ऋषिकेश की स्थापना की गई है अतः मूल वाद के अन्ततः उपशमित होने की स्थिति में निष्पादन के फलस्वरूप वादग्रस्त भूमि का अध्यासन मूल वादी को दिए जाने सम्बन्धी कार्यवाही को उल्टाकर (undo) वादग्रस्त भूमि मूल प्रतिवादी पक्ष को प्रत्यास्थापित की जा सकती है और इस हेतु मूल वाद आज्ञप्त एवं पारित डिकी को निष्पादन करने वाला न्यायालय ही सक्षम है जो कि वर्तमान में उपखण्ड, ऋषिकेश तहसील के सृजन के दृष्टिगत अधीनस्थ न्यायालय ही है। मूल प्रत्यास्थापन प्रार्थना पत्र उपखण्ड अधिकारी द्वारा इसके समक्ष ही प्रस्तुत किया गया था। तद्नुसार यह वाद बिन्दु सकारात्मक निर्णीत होता है।

5. क्या निष्पादन कार्यवाही के अन्तर्गत धारा—144 सी0पी0सी0 में अतिचारी को न्यायालय द्वारा कब्जा दिलाया जा सकता है :— पूर्व में कई स्तर पर उल्लेख किया जा चुका है उत्तर प्रदेश काश्तकारी अधिनियम में योजित वाद अज्ञाप्त होने के आधार पर निष्पादन की कार्यवाही व्यवहार में लाई गई जिसके फलस्वरूप प्रतिवादी पक्ष के वादग्रस्त भूमि का अध्यासन वादी पक्ष को दिया गया। धारा—144 दीवानी प्रकिया संहिता को अन्तर्गत अन्ततः डिकी के निष्प्रभावी हो जाने के दृष्टिगत प्रत्यास्थापन कराया जाना एक विधिक अनिवार्यता है। वादी पक्ष को अध्यासन दिया गया था इसमें कोई विवाद नहीं है। प्रत्यास्थापन एक विधिक अनिवार्यता है जो कि साम्या के सिद्वान्त पर भी आधारित है। विधि विज्ञान के सिद्वान्तों के अनुसार अध्यासन एक विधिक अधिकार है भले ही अध्यासन अवैधानिक हो एवं अध्यासी तब तक अपना अध्यासन बनाए रखने का अधिकारी है जब तक कि उससे विधितः अध्यासन वापस नहीं लिया जाता। विधि अवैधानिक अध्यासन का भी संरक्षण करता है एवं अवैधानिक अध्यासन को समाप्त करने के लिए विधिक व्यवस्था का ही सहारा लिया जा सकता है।

निगरानीकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने इस कथन के समर्थन में आर0डी0 1984(एफ0बी0) पृष्ठ–76 में मा0 राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश की न्यायिक व्यवस्था कि अतिचारी के पक्ष में प्रत्यास्थापन नहीं प्रदान किया जायेगा यदि चकबन्दी न्यायालयों द्वारा सत्व का प्रश्न उनके विरूद्व अवधारित कर दिया हो, परन्तु प्रत्यास्थापन उस दशा में मना नहीं किया जायेगा जबकि चकबन्दी न्यायालय द्वारा अथवा पूर्व निर्णयों द्वारा स्वत्व का प्रश्न उसके पक्ष में निर्णीत कर दिया गया हो। आलोच्य प्रकरण में अतिचारी के स्वत्व के प्रश्न के अवधारण होने जैसी स्थिति नहीं है। प्रकरण में स्वत्व के निर्धारण से पूर्व ही उपशमन की कार्यवाही हो गई है। पूर्व प्रस्तर में अध्यासन के एक विधिक अधिकार होने सम्बन्धी विमर्श अंकित किया जा चुका है।अतः प्रश्नगत न्यायिक व्यवस्था वर्तमान प्रकरण में प्रासंगिक नहीं है।

विद्वान अधिवक्ता निगरानीकर्ता द्वारा प्रस्तुत ए0डब्लू0सी0 1983 पृष्ठ–673, ए0आई0आर0 1961 कलकत्ता पृष्ठ–70, ए0आई0आर0 1941 पी0सी0 पृष्ठ–128 में उद्वरित तत्सम्बन्धी दृष्टान्तों की ओर ध्यान आकृष्ट कराया गया है। ए0डब्लू0सी0 1983 पृष्ठ–673 भी ए0आई0आर0 1941 पी0सी0 पृष्ठ–128 में प्रतिपादित न्यायिक सिद्वान्त पर आधारित है। ए0आई0आर0 1983 पृष्ठ–673 में प्रत्यास्थापन प्रार्थी का अध्यासन एक विक्रय पत्र पर आधारित था जिसे मा0 उच्च न्यायालय द्वारा शून्य व निष्प्रभावी घोषित किया गया था। तद्नुसार उसका अध्यासन अतिचारी के रूप में माना गया। ए0आई0आर0 1941 पी0सी0 पृष्ठ–128 में भी प्रत्यास्थापन प्रार्थी का अध्यासन एक खदान के लिए स्वीकृत पट्टे पर आधारित था एवं पट्टे की जब्ती के विधिसम्मत न होने के आधार पर प्रत्यास्थापन प्रार्थी का अध्यासन अतिचारी के रूप में माना गया। तद्नुसार उक्त दोनों प्रकरणों में प्रत्यास्थापन प्रार्थी का अध्यासन प्रतिस्थापित नहीं किया गया क्योंकि उनका अध्यासन किसी विलेख अथवा ग्रान्ट पर आधारित था जो कि कालान्तर में क्रमशः शून्य व निष्प्रभावी एवं अनधिकृत हो गये जबकि वर्तमान प्रकरण में प्रतिवादी/उत्तरदाता पक्ष का अध्यासन एक स्वतन्त्र विधिक अधिकार है जिस पर उपशमन के कारण कोई अन्तिम निर्णय नहीं हो सका।

जहां तक ए0आई0आर0 1961 कलकत्ता पृष्ठ–70 का प्रश्न है इस न्यायिक दृष्टान्त से कोई मत भिन्नता वर्तमान प्रकरण में नहीं हो सकती है क्योंकि प्रत्यास्थापन हेतु पारित डिक्री को परवर्तित करना अथवा उल्टा किया जाना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि प्रत्यास्थापन प्रार्थी को इस हेतु लाभ पाने का अधिकारी भी होना होगा। इसी दृष्टान्त के प्रस्तर 24 व 25 में यह स्पष्ट किया गया है कि जब तक बेदखली के लिए दावा डिक्री पारित नहीं हो जाता है तब तक अध्यासी अपना अध्यासन बनाए रखने का अधिकारी है। तद्नुसार वर्तमान प्रकरण में भी जब तक वादी पक्ष को विधिवत बेदखल नहीं किया जाता तब तक वे अपना अध्यासन बनाए रख सकते हैं। इसी कम में ए0आई0आर0 1941 पी0सी0 पृष्ठ–128 में प्रीविकौन्सिल ने इस न्यायिक उक्ति को दोहराया है कि न्यायालय के कृत्य से किसी भी पक्ष को कोई क्षति न हो अर्थात पूर्व में उद्वरित उक्ति"actus curiae neminem gravabit"

वर्तमान प्रकरण में सटीक रूप से लागू होती है। वर्तमान प्रकरण में प्रतिवादी पक्ष का अध्यासन किसी लिखत, विलेख अथवा ग्रान्ट पर आधारित नहीं है एवं ऐसे अध्यासन के आधार पर अन्ततः उसके अधिकारों की घोषणा हो सकती है। यहां पर यह भी उल्लेखनीय है कि यदि मूल वाद एवं उससे जनित अपीलों की कार्यवाहियाँ व्यवहृत नहीं हुई होती तो अध्यासन के आधार पर प्रतिवादी पक्ष/प्रत्यास्थापन प्रार्थी के पूर्व पुरूषों के अधिकारों की घोषणा उत्तर प्रदेश नागर क्षेत्र जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के अन्तर्गत हो सकती थी क्योंकि जमींदारी उन्मूलन के फलस्वरूप अध्यासियों के अधिकार भी निस्तारित होते। तद्नुसार उद्धरित न्यायिक दृष्टान्तों के अनुसार उसको प्रत्यास्थापन से वंचित नहीं रखा जा सकता। तद्नुसार यह वाद बिन्दु भी सकारात्मक निर्णीत होता है।

6. क्या माननीय राजस्व परिषद के आदेश दिनांक 12–11–1963 के अनुसार अपील के उपशमित होने पर पक्षकारों का दावा Uttar Pradesh Urban Area Zamindari and Land Reforms Act के प्राविधानों व उसमें निर्मित नियमों के अन्तर्गत निर्णीत किया जायेगाः–

जैसा कि पूर्व में कई स्तर पर उल्लेख किया जा चुका है कि उत्तर प्रदेश नागर क्षेत्र जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के प्राविधानों के अन्तर्गत मूल वाद एवं उससे सम्बन्धित अपील उपशमित हो गई थी परन्तु उससे पूर्व द्वितीय अपील स्तर तक की कार्यवाही उत्तर प्रदेश काश्तकारी अधिनियम के अन्तर्गत ही की गई थी। अतः प्रत्यास्थापन की कार्यवाही के उत्तर प्रदेश नागर क्षेत्र जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के अन्तर्गत व्यवहृत होने का प्रश्न विधितः उत्पन्न नहीं होता है। प्रत्यास्थापन की कार्यवाही तद्नुसार जिस अधिनियम के अन्तर्गत मूल वाद स्वीकार/आज्ञप्त किया गया उसी अधिनियम अर्थात उत्तर प्रदेश काश्तकारी अधिनियम के अन्तर्गत ग्राह्य एवं विनिश्चित होगा।

यदि निगरानीकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धरित ए0एल0जे0 1972 एच0सी0 पृष्ठ–30 न्यायिक दृष्टान्त कि उपशमन के उपरान्त निष्पादन कार्यवाहियों में जिस अधिनियम की वर्जना द्वारा वाद उपशमित हुआ हो उसी अधिनियम के अन्तर्गत व्यवहृत होगी एवं जहां तक ए0एल0जे0 1972 एच0सी0 पृष्ठ–30 का सम्बन्ध है, यद्यपि यह दृष्टान्त प्रतिस्थापन के समबन्ध में न होकर निष्पादन के सम्बन्ध में है, तथापि उत्तर प्रदेश नागर क्षेत्र जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्यास्थापन की कार्यवाही व्यवहृत होने की दृष्टि से भी इस हेतु काल अविध एक वर्ष ही है एवं जैसा कि पूर्व में विवेचित किया जा चुका है कि वाद उपशमन के उपरान्त एक वर्ष की अवधि में प्रत्यास्थापन प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किये जाने की दशा में प्रत्यास्थापन ग्राह्य है। जहां तक आर0डी0 1955 एफ0बी0 पृष्ठ 107 में उद्धरित न्यायिक व्यवस्था का प्रश्न है जिसके अनुसार उपशमन से किसी व्यक्ति को किसी अन्य सक्षम न्यायालय में अपने अधिकारों को सिद्व करने से वंचित/रोका नहीं जा सकता है वह इस प्रकरण में प्रासंगिक नहीं है। तद्नुसार यह वाद बिन्दु इस आशय से निर्णीत होता है कि उत्तर प्रदेश काश्तकारी अधिनियम अथवा उत्तर प्रदेश नागर क्षेत्र जमींदारी उन्मूलन अधिनियम

के अन्तर्गत प्रत्यास्थापन अनुमन्य होने की स्थिति में प्रत्यास्थापन की अनुमन्यता/ग्राह्यता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

7. क्या जहां पर कानून के द्वारा Intervene किया गया है, वहां पर धारा–144 सी0पी0सी0 के अन्तर्गत कब्जा प्रदान किया जा सकता है?

एवं

8. क्या जहां पर न्यायालय को किसी पक्षकार को किसी प्रतिकार को प्रदान करने का क्षेत्राधिकार नहीं था ऐसी दशा में क्या न्यायालय द्वारा पारित आदेश और उसके आधार पर पारित डिक्री शून्य है ? और यदि डिक्री शून्य है तो क्या उस शून्य प्रश्न को वाद के दौरान किसी भी स्तर पर, जिसमें निष्पादन कार्यवाही भी सम्मिलित है, में उठाया जा सकता है :– इस सम्बन्ध में मेरा एक ध्यान एक न्यायिक उक्ति " विधिक कार्य से किसी की हानि नहीं होती"(actus legis nemini est damnosus) की ओर जाता है अर्थात किसी विधिक प्राविधान के हस्तक्षेप से कोई कार्यवाही निष्प्रभावी होती है तो ऐसे हस्तक्षेप से किसी पक्ष विशेष को अनुचित क्षति नहीं हो सकती है। प्रश्नगत प्रकरण में काश्तकारी अधिनियम के अन्तर्गत वाद योजित एवं आज्ञप्त हुआ एवं डिक्री के निष्पादन के फलस्वरूप प्रतिवादी पक्ष से वादग्रस्त भूमि का कब्जा वादी को दिलवाया गया एवं अन्ततः वाद एवं तत्सम्बन्धी अपील उपशमित हो गये तो ऐसे में निष्प्रभावी न्यायिक कार्यवाही का दुष्परिणाम प्रतिवादी पक्ष के विरूद्व नहीं हो सकता है। निष्प्रभावी डिक्री के अन्तर्गत वादग्रस्त भूमि का अध्यासन अन्तरित हुआ जिसे धारा–144 दीवानी प्रकिया संहिता के अन्तर्गत उल्टा कर प्रतिवादी पक्ष को दिलाया जाना न केवल विधितः आवश्यक है अपितु साम्या के सिद्वान्त से समर्थित है। न्यायालय की कार्यवाही से वादग्रस्त भूमि का अध्यासन वादी पक्ष को हस्तगत हुआ जिसे अन्ततः वाद उपशमित होने की स्थिति में वापस किया जाना अनिवार्य था। इस सम्बन्ध में न्यायिक उक्ति कि " न्याय के कार्य से किसी की हानि नहीं होती"(actus curiae neminem gravabit) से भी उक्त स्थिति की पुष्टि होती है।

इस सम्बन्ध में निगरानीकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विधिक हस्तक्षेप के आधार पर उपशमित वाद के फलस्वरूप प्रत्यास्थापन अनुमन्य न होने के सम्बन्धी ए0आई0आर0 2004 एस0सी0 पृष्ठ 1781 का जहां तक सम्बन्ध है उससे सम्बन्धित प्रकरण के तथ्य कदाचित भिन्न हैं जिसमें अधिनियम 1960 के द्वारा सीधे–सीधे वादग्रस्त भूमि को राज्य सरकार में निहित कर दिया गया था इसलिए प्रत्यास्थापन अनुमन्य नहीं किया गया था। चूंकि ऐसे निष्पादन से अध्यासन राज्य सरकार को ही प्राप्त होना था। वर्तमान प्रकरण में सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश नागर क्षेत्र जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के प्राविधान के अनुसार वाद उपशमित हुआ है तत्पश्चात ही उक्त अधिनियम के अन्तर्गत की जाने वाली कार्यवाही की गई है। वर्तमान प्रकरण में प्रश्नगत भूमि का निहितन हुआ या नहीं, यदि हुआ तो कब हुआ निहितन के उपरान्त यह भूमि किस के पक्ष में व्यवस्थित हुई आदि स्पष्ट नहीं किये गये हैं। यह भी सम्भव है कि वादग्रस्त भूमि

जमींदार अथवा हितग्राही में व्यवस्थित किया गया। यदि प्रत्यास्थापन प्रार्थी के पूर्व पुरूषों का अध्यासन बना रहता तो ऐसी प्रबल सम्भावना थी कि अध्यासित भूमि उन्हीं के पक्ष में व्यवस्थित होती। तथ्यों में स्पष्टता के अभाव में वर्णित दृष्टान्त इस प्रकरण के निस्तारण में सहायक नहीं है।

निगरानीकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धरित न्यायिक दृष्टान्त आर0डी0 2013 वाल्यूम–118 पृष्ठ–828, ए0आई0आर0 1996 एस0सी0 पृष्ठ–1819 एवं ए0आई0आर0 1979 पंजाब एवं हरियाणा पृष्ठ–116 कि डिक्री की शून्यता निष्पादन न्यायालय के समक्ष उठाया जा सकता है के सम्बन्ध में कोई मत भिन्नता नहीं है परन्तु वर्तमान प्रकरण में वादी पक्ष यह स्पष्ट नहीं कर पाया कि डिक्री अथवा उपशमन की कार्यवाही किस प्रकार निष्प्रभावी है। कदाचित इस सम्बन्ध में कोई अभिवचन भी नहीं प्रस्तुत हुए हैं, निगरानीकर्ता स्वंय अन्ततः उपशमित वाद में पारित डिक्री का लाभ ले चुका है। अपील एवं वाद के उपशमन के विरूद्व उनके द्वारा कोई न्यायिक उपचार नहीं प्राप्त किया है। तद्नुसार उपशमन की कार्यवाही अन्तिम व बाध्यकारी है। एक अन्य व्यवस्था यह भी दी गई है कि पक्षकार मात्र तकनीकि आधारों पर लाभ प्राप्त कर क्षतिपूर्ति भुगतान करने से मना नहीं कर सकता जो कि इस वर्तमान प्रकरण में सही बैठती है।

तद्नुसार यह वाद बिन्दु–7 सकारात्मक विनिश्चित होता है एवं वाद बिन्दु संख्या–8 इस आशय से विनिश्चयित किया जाता है कि किसी ऐसी डिक्री जो कालान्तर में विधिक प्राविधानों के अन्तर्गत शून्य घोषित हुई हो के अधीन निष्पादन द्वारा वादग्रस्त भूमि के अध्यासन की स्थिति परिवर्तित हुई है तो उसे उसी न्यायालय द्वारा प्रत्यास्थापित किया जा सकता है।

9. क्या जहां पर धारा–144 सी0पी0सी0 के अन्तर्गत हर्जे की राशि को वापिस करने का प्रश्न है तो वह ऋण को वापिस करने का है, इसलिए क्या श्री राममूर्ति के उत्तराधिकारियों को क्षति की डिक्री को वापिस प्राप्त करने के लिए उत्तराधिकार प्रमाण–पत्र न्यायालय से लेना आवश्यक है :–

निगरानीकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि धारा–144 दीवानी प्रकिया संहिता के अन्तर्गत हर्जे की राशि का वापस पाने के लिए उत्तराधिकार प्रमाण पत्र लिया जाना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि मूल प्रतिवादी राममूर्ति के उत्तराधिकारियों को न्यायालय की कार्यवाही में विधितः प्रत्यास्थापित किया गया है। मात्र प्रश्न मूल प्रतिवादी राम किशन के विधिक उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में है। अवर न्यायालय ने इस सम्बन्ध में यह विवेचित किया है कि दीवानी न्यायालय में मूल प्रतिवादी रामकिशन के विधिक उत्तराधिकारियों के मृतक प्रतिवादी राममूर्ति के विधिक उत्तराधिकारियों के साथ कोई समझौता किया है जो कि सिविल न्यायालय, सीनियर डिवीजन, ऋषिकेश के वाद संख्या–40/2012 सतीश चन्द्र बनाम सुरेश चन्द्र आदि में पारित निर्णय व डिक्री दिनांक 16–05–2012 का भाग

है जिसके अनुसार वर्तमान निगरानी के उत्तरदाता सतीश चन्द्र संगर का विवादित भूमि के सभी अधिकार प्राप्त होंगे। निगरानीकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त समझौते के सम्बन्ध में कोई तर्क प्रस्तुत नहीं किया है और न ही उन्होंने संदर्भित समझौते के अविधिक व अमान्य होने के सम्बन्ध में कोई कथन अथवा तर्क प्रस्तुत किया है। इस बिन्दु के इस स्थिति के दृष्टिगत अधीनस्थ न्यायालय द्वारा हर्जे की राशि प्राप्त करने हेतु उत्तराधिकार प्रमाण पत्र लिया जाना आवश्यक प्रतीत नहीं होता है, परन्तु यह उसी न्यायालय पर निर्भर करेगा कि यदि वह उचित समझे तो उसके द्वारा आदेशित धनराशि को प्राप्त करने के लिए उत्तराधिकार प्रमाण पत्र की मांग करे। इस बिन्दु का सम्बन्ध प्रकरण के गुणदोष से न होकर पारित आदेश को वास्तविक रूप से कियान्वित करने की प्रकिया से है जिसे अधीनस्थ न्यायालय यथासमय स्वंय देखेगा।

जहां तक विद्वान अधिवक्ता निगरानीकर्ता द्वारा प्रस्तुत ए0आई0आर0 1945 पृष्ठ–495, ए0आई0आर0 1986 पृष्ठ–204 में दी गई न्यायिक व्यवस्था का प्रश्न है जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है अधीनस्थ न्यायालय यदि उचित समझे तो उत्तराधिकार प्रमाण पत्र की मांग कर सकता है। यह वाद बिन्दु तद्नुसार निर्णीत किया जाता है।

10. क्या यदि भूमि अकृषक सीमांकित हुई है, जैसा कि पत्रावली पर उपलब्ध खतौनी व आकार पत्र से स्पष्ट है, तो ऐसी दशा में क्या Uttar Pradesh Urban Area Zamindari and Land Reforms Act के प्राविधान लागू नहीं होंगे:– निगरानीकर्ता/वादी ने स्वंय वाद उत्तर प्रदेश काश्तकारी अधिनियम के अन्तर्गत योजित किया। उत्तर प्रदेश नागर क्षेत्र जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के अन्तर्गत वाद एवं अपील उपशमित हुए। यदि नागर क्षेत्र जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के अधीन हुई कार्यवाही में वादग्रस्त भूमि सम्पूर्णता में या आंशिक रूप में सीमांकित हुई हो तो उसका प्रभाव न तो मूल वाद की कार्यवाही पर पड़ता है और न उससे जनित प्रत्यास्थापन/निष्पादन की कार्यवाही पर। प्रत्यास्थापन के स्तर पर यह कथन मान्य नहीं है विशेष रूप से उस स्थिति में जब वादी/निगरानीकर्ता ने स्वंय काश्तकारी अधिनियम के अन्तर्गत वाद योजन एवं निष्पादन की कार्यवाही कराई हो। यह विनिश्चित किया जा चुका है कि प्रत्यास्थापन की कार्यवाही उत्तर प्रदेश काश्तकारी अधिनियम के अन्तर्गत ही ग्राह्य है परन्तु कतिपय न्यायिक दृष्टान्तों के आलोक में उसे उत्तर प्रदेश नागर क्षेत्र जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के अन्तर्गत भी ग्राह्य माना गया है परन्तु उक्त दोनों में से एक अधिनियम के अन्तर्गत भी प्रत्यास्थापन अनुमन्य होने की स्थिति में एवं प्रत्यास्थापन को निष्पादन की भांति माने जाने की स्थिति में उसके लिए निर्धारित काल अवधि एक ही वर्ष है। निगरानीकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस सम्बन्ध में उद्धरित न्यायिक दृष्टान्त भी इसी दृष्टिकोण को इंगित करता है।

एक तथ्य यह भी है कि वादग्रस्त भूमि का अध्यासन निष्पादन की कार्यवाही के उपरान्त वादी पक्ष के पास आ जाने के उपरान्त स्थल की स्थिति में जो भी परिवर्तन किए गए

अथवा हुए वे वादी पक्ष द्वारा ही किए गए, जबकि उक्त भूमि सम्बन्धी न्यायिक विवाद प्रचलित था। तदनुसार निगरानीकर्ता वादग्रस्त भूमि के अकृषक होने के कथन को उठाने से विवंधित (estopped) है। You can not blow hot and cold at the same time, डिक्री से लाभ लेते समय वादग्रस्त भूमि की प्रकृति का भान नहीं हुआ परन्तु जब उपशमनोपरान्त प्रत्यास्थापन का अवसर आया तो भूमि के अकृषक होने का कथन प्रस्तुत किया गया। इस सम्बन्ध में न्यायिक उक्ति "allegans contraria non est audiendus अर्थात जो व्यक्ति विरोधी बातों का अभिकथन करता है उसकी सुनवाई नहीं होगी" अवलोकनीय है। तदनुसार वाद बिन्दु नकारात्मक निर्णीत किया जाता है।

3. क्या प्रार्थीगण प्रार्थना पत्र में दिये गये अनुतोष को प्राप्त करने के अधिकारी हैं:—

उपर्युक्त विमर्श एवं विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि प्रार्थी/उत्तरदाता प्रार्थित अनुतोष प्राप्त करने का अधिकारी था। अधीनस्थ न्यायालय का निर्णय/आदेश पोषणीय है। अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय में जहां कहीं उपर्युक्त विमर्श एवं विवेचन से भिन्न विनिश्चयन अंकित है वे तदनुसार उपान्तरित माने जायेंगे। जहां तक प्रस्तुत न्यायिक व्यवस्था ए0आई0आर0 1935 कलकत्ता पृष्ठ—206 जिसमें यह अवधारित किया गया है कि यदि डिक्री निष्पादन के फलस्वरूप प्राप्त अचल सम्पत्ति को पट्टे पर दी गई हो तो उस स्थिति में विविध लाभ (mesne profits) के आंकलन का आधार किराया मूल्य होगा। इस दृष्टान्त के दृष्टिगत भी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा एतद्सम्बन्धी गणना न्यूनतम है, परन्तु यह भी न्यायसंगत है कि प्रत्यास्थापन प्रार्थी आदेशित राशि पर निर्धारित ब्याज अदायगी की तिथि तक पाने का अधिकारी भी होगा। इसी कम में उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत न्यायिक व्यवस्थाओं कमशः ए0आई0आर0 1958 आन्ध्र प्रदेश पृष्ठ—593, ए0आई0आर0 1992 दिल्ली पृष्ठ—92, ए0आई0आर0 1995 सुप्रीम कोर्ट पृष्ठ—1726,आर0एस0 लीगल 2004 इलाहाबाद हाईकोर्ट पृष्ठ—69, ए0आई0आर0 1965 आन्ध्र प्रदेश पृष्ठ—398 एवं ए0आई0आर0 1941 मद्रास पृष्ठ—36 द्वारा भी स्पष्ट किया गया है कि प्रत्यास्थान पर न्यायालय द्वारा वाद व्यय, ब्याज, हर्जाना, क्षतिपूर्ति, विविध व्यय आदि प्रदान किये जा सकते हैं। तदनुसार यह वाद बिन्दु सकारात्मक रूप से निर्णीत किया जाता है।

आदेश

उपर्युक्त विवेचना के आलोक में निगरानी अस्वीकृत की जाती है।

(पी0एस0 जंगपांगी)
सदस्य(न्यायिक)।

आज दिनांक 28—02—2014 को खुले न्यायालय में उद्घोषित, हस्ताक्षरित एवं दिनांकित ।

(पी0एस0 जंगपांगी)
सदस्य(न्यायिक)